



भारतीय साहित्य प्रतिभा के संस्पर्श कालिदास

गोविंदभाई के. मुंधवा

भारतीय साहित्य ही नहीं, समूचे विश्व साहित्य के शिखरस्थ रचनाकारों में कालिदास का स्थान निर्विवाद और अप्रतिम है। वे भारतीय सांस्कृतिक धारा के अद्वितीय चितरे हैं। पूरी परम्परा अनमं उतरी है और उनकी प्रतिभा के संस्पर्श से पुनः जीवित होकर प्रवाहित हुई है। यश, महिमा, विस्तार और ऊंचाई के साथ गहराई में कालिदास का साहित्य अपना सानी नहीं रखता। महाकवि कालिदास का सृजन क्षेत्रा विस्तृत है। वे एक सफल महाकाव्यकार, सर्वोत्कृष्ट नाटककार और गीत काव्य-प्रणेता हैं। उनकी चहुमुखी प्रतिभा संस्कृत के अन्य कवियों की अपेक्षा उनके वैशिष्ट्य प्रतिपादन में विशेष सहायक है। कालिदास अपने सौंदर्य दर्शन, रस व्यंजना के बल पर संस्कृत के समस्त कवियों में अग्रणी हैं। हिन्दी में जहां सूरदास को सूर्य और तुलसीदास को चंद्र के सदृश्य बताया गया है, वहीं संस्कृत में हम कालिदास के लिए कह सकते हैं कि यह ब्रह्माण्ड है, जहां ये सब स्वतः ही विद्यमान हैं। महाकवि के साहित्य में हमें सूर का शृंगार और तुलसी का आध्यात्म दोनों ही देखने को मिल जाता है। जो सृजन कर्ता है उसकी सृजन-प्रक्रिया के बीज हमें रचनाकार के साहित्य में स्फुट रूप से प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार कालिदास का काव्य रचना-प्रक्रिया विषयक संज्ञान हमें उनके साहित्य में भी आसानी से प्राप्त हो जाता है। महाकवि कालिदास ने स्फुट रूप से अपने साहित्य में काव्य रचना-प्रक्रिया विषयक विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने अनुभूति के सूक्ष्म स्तर से लेकर, स्थूल स्तर पर शब्द के माध्यम से काव्य की अभिव्यक्ति के साथ-साथ, सृजन सामग्री की उपयोगिता तथा सृजित के सौंदर्यीकरण तक की चर्चा अपनी कृतियों के माध्यम से की है। काव्य रचना-प्रक्रिया हो या अन्य कोई नवनिर्माण की प्रक्रिया, हमें हमेशा विधाता की सृष्टि सृजन- प्रक्रिया के समान ही होती है। कविता की रचना- प्रक्रिया एक दृष्टि से नवनिर्माणोन्मुखी कृत्य पक्ष से जुड़ी हुई प्रक्रिया है। जिसमें रचनाकार नित नवीन सृजन की ओर उन्मुख रहता है। महाकवि कालिदास ने अपनी सृजन- प्रक्रिया में वेदों का ही अनुसरण किया है क्योंकि वेदों में ‘‘कवयः सन्ति वेधसः’’ के माध्यम से कवि के सृजन को विधाता के सृजन से सदृश्य माना है। कालिदास ने भी विधाता के सृजन के माध्यम से ही काव्य सृजन- प्रक्रिया को समझाया है। राजा दुष्यन्त के वक्तव्य के द्वारा काव्य रचना- प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए महाकवि का कथन है-

‘‘चित्ते निवेश्य परिकल्पित सत्वयोगाद्
रूपोच्ययेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा म
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥’’

राजा दुष्यन्त ने शकुंतला के अपूर्व सुन्दर रूप को देखा तो महाकवि कालिदास की काव्य सृजन-प्रक्रिया एक मनोवैज्ञानिक और सौन्दर्य शास्त्रीय अवधारणा है, जिसे महाकवि कालिदास की रचनाओं में मैंने खोजने का प्रयास किया है। महाकवि कालिदास रचना- प्रक्रिया पर सजग नजर आता है और कला सृजन-प्रक्रिया के स्पष्टीकरण के माध्यम से अपनी कविता की रचना- प्रक्रिया और उसके सैद्धान्तिक पक्ष को उजागर करने का प्रयत्न करते हैं। आशा है कि आधुनातन संदर्भ में यह शोध-पत्र साहित्य जगत में नित नवीन शोधों की उन्मुख शोध कार्यों को एक हल्का-सा झोंका तो देगा ही। वह बोला कि एक ओर मैं शकुंतला के अद्भुत रूप को देखता हूं और दूसरी

ओर विधाता की अद्भुत सृजन क्षमता को देखता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि शकुंतला को गढ़ने के लिए विधाता ने पूर्णतः समाहित होकर पहले उसे अपने चित्त में बिठाया होगा और फिर उसने ऐसा स्त्री रत्न बनाया होगा, जो पुराने चौदह रत्नों से भिन्न बन गया। महाकवि ने विधाताकृत शकुंतला के सृजन के माध्यम से काव्य सृजन- प्रक्रिया के विविध पक्षों की ओर संकेत किया है। इससे सबसे पहले यह बात स्पष्ट होती है कि कवि सर्वप्रथम प्रभाव ग्रहण करता है, वह सृष्टि में व्याप्त किसी आकर्षक वस्तु और उसके अद्वितीय सौंदर्य को देखकर द्रवीभूत हो उठता है और उससे प्रभावित होता है तत्पश्चात् अनुभूति ग्रहण करता है। जब कवि प्रभाव ग्रहण कर लेता है तब बात आती है, चित्त की एकाग्रता की जिसे कालिदास ने अपनी कविता के माध्यम से महत्त्वपूर्ण माना है। वगैर चित्त की एकाग्रता के या वगैर समाधिस्थ कवि रचना कर ही नहीं सकता। वह समाधिस्थ होकर अनुभूति को अपने हृदय में स्थापित करता है, उसे अपने चित्त में स्थान देता है और अन्ततः वाणी द्वारा शब्दों के माध्यम से वह उसे एक ऐसा रूप दे देता है, जिससे उस हृदयस्थ वस्तु का नवीन एवं विलक्षण स्वरूप हमारे सम्मुख उपस्थित होता है तथा उक्त स्वरूप का दर्शन पाकर हम लोग इस तरह आत्मविभोर हो जाते हैं जैसे कालिदास का दुष्यन्त विधाता की रचना शकुंतला को देखकर। स्पष्ट है कि बाह्य जगत के भाव ही कवि भाव बनकर काव्य में अभिव्यक्त होते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए कालिदास के बाद आचार्य भरत ने भी कहा है- “योऽथोहृदयसंवादो तस्य भावः रसोदभवः।” अर्थात् कवि के हृदय के संवाद जब जगत के बाह्य भावों से होता है तब रस की उत्पत्ति होती है और इसी रसानुभूति को कवि काव्य में अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है- “कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भावमुच्यते।” यहां भावों की अनिवार्यता स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। अतः कलाकृति के आकर्षण का मूल रहस्य भावाभिव्यक्ति ही है। अर्थात् माध्यम अंगों का सौंदर्य उसमें योगदान करता है, पर कला की आत्मा भावानुप्रवेश ही है। कालिदास का कथन है- “मधुरावस्थान दर्शनीयो भावानुप्रवेशः।”

स्पष्ट है कि भावानुप्रवेश के अभाव में रचना असम्भव है। अतः काव्य का सृजन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कवि की भावनाएं अपने अंतिम रूप में प्रतीयमान होकर व्यक्त होती हैं। वगैर भावों के, वगैर भावावेगों के रचना सम्भव ही नहीं है। हम कह सकते हैं कि सिसृक्षण सृजन के क्षण) में कवि के अन्दर प्रबल भावों का आवेग विद्यमान होता है, वगैर आवेग के सृजन- प्रक्रिया शुरु ही नहीं हो सकती। काव्य सृजन- प्रक्रिया एक आवेग पूर्ण प्रक्रिया है। काव्य सृजन- प्रक्रिया का एक और महत्त्वपूर्ण चरण जिसकी हमने शुरु में चर्चा की थी, वह है, भावानुभूति के माध्यम से लेखन काल में तल्लीनता। चित्त की एकाग्रता अथवा समाधिस्थावस्था काव्य सृजन- प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है। महाकवि कालिदास ने काव्य रचना- प्रक्रिया में चित्त की एकाग्रता या समाधि को आवश्यक माना है। उपनिषदों के “ध्यानमुपास्वेती” के आधार पर ध्यान का अनुसरण करके ही उन्होंने स्पष्ट किया है कि कवि समाधिस्थ या ध्यानमग्न होकर ही काव्य की रचना कर सकता है। शिथिल समाधि या चित्त की एकाग्रता के बिना कविता में कवि के हृदय के वे भाव ही पूर्ण रूप से व्यक्त ही नहीं होंगे, जिन्हें वह व्यक्त करना चाह रहा है। समाधि की शिथिलता कला और कलाकार दोनों की असफलता है। उत्तम रचना समाधि के अभाव में असंभव है, इसे महाकवि अग्निमित्रा के वक्तव्य के माध्यम से स्पष्ट कर देते हैं-

“चित्रागतायामस्यां कान्तिसंवादशक्ति मे हृदयम्।
सम्प्रति शिथिलसमाधिं मन्ये येनेयमानिखिता।।”

अग्निमित्रा ने कहीं मालविका का चित्रा देखा तथा चित्रा के सौन्दर्य को देखकर वह उससे प्रभावित हुआ। लेकिन जब उसने प्रत्यक्ष रूप से सजीव मालविका को देखा तो उसे चित्राकार की चित्राकारी पर शंका होने लगी और वह कहने लगा कि चित्राकार ने मालविका के चित्रा को वैसा नहीं

बनाया है जैसे वह है, चित्राकार ने सावधानी से उसका चित्र नहीं बनाया होगा। शिथिल समाधि होने के कारण वह उसे यथारूप चित्रित नहीं कर पाया। यहां महाकवि कालिदास का आशय यह है कि समाधि ही सृजन की प्रक्रिया को साधती है, कवि सृजन में पूर्ण तल्लीन रहता है, उसे किसी प्रकार की सुध-बुध नहीं रहती। वह सारी झंझटों से, सारे झंझावातों से एकदम मुक्त रहता है। वहां बस कवि होता है और उसकी कविता। जब तक समाधि है तब तक तो सृजन कार्य उत्कृष्ट रूप से चलता रहेगा लेकिन जहाँ समाधि टूटी वहीं सृजन का कार्य इस तरह से धरा का धरा रह जायेगा, जैसे सौ किलोमीटर प्रति घंटे की गति से चलने वाली किसी गाड़ी का टायर फट गया हो। अतः महाकवि कालिदास के अनुसार काव्य सिसृक्षण में समाधि की अवस्था या चित्त की एकाग्रता अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कलाकार रचना- प्रक्रिया में अपनी विषय वस्तु के साथ पूरी तरह से तल्लीन नहीं होगा, तब तक उसकी काव्य-कला या कोई भी कला पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकती। महाकवि द्वारा विवेचित इस समाधिस्थ चित्त की अवस्था का अनुसरण उनके बाद भी होता रहा है। पाचीन पौरस्त्य काव्यशास्त्रीयों जैसे वामन ने “चत्तैकाग्र्यमवधानम्” के माध्यम से, रुद्र ने “मनसि सदा सुसमाधिनि”, आनन्दवर्धन ने “रस समाहित” महिमभट्ट ने “चिन्तास्तिमित चेतसः”, वाग्भट्ट ने “मनः प्रसत्ति” और पं, राज जगन्नाथ ने “कवेरालोचनं समाधिः” कहकर चित्त की एकतानता को सृजन-प्रक्रिया में अनिवार्य माना है। स्पष्ट है कि समाधि की अवस्था कला सृजन के लिए अनिवार्य शर्त है। जिसका कालिदास के बाद भी विद्वानों ने अनुसरण किया है। शिथिल समाधि होते ही कला में दोष आ जाता है। महाकवि कालिदास ने काव्य सृजन में वाणी और अर्थ की आवश्यकता का संकेत करते हुए उन्हें शिव-पार्वती के समान सम्पूक्त बताया है- “वागर्थाविव सम्पूक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ बन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।” जैसे वाणी और अर्थ अलग होते हुए भी एक ही कहलाते हैं, वैसे ही पार्वती और शिव भी कहने को दो रूप हैं, परन्तु वस्तुतः हैं वे एक ही। अतः वाणी और अर्थ को ठीक से समझने और उचित उपयोग करने के लिए संसार के माता-पिता पार्वती और शिव को प्रणाम करता हूँ, जो शब्द और अर्थ के समान एक रूप हैं। वेदों में जिस ‘वाक्’ तत्त्व की उपासना की गई है, उसी का अनुसरण कालिदास ने वाणी और अर्थ की उपासना करके किया है क्योंकि यही अभिव्यक्ति का माध्यम है तथा यही कवि के अन्तर्मन के सूक्ष्म स्तर से लेकर अभिव्यक्ति के स्थूल स्तर तक विद्यमान होता है। कवि अपनी रचना-प्रक्रिया में अपने भावों को वाणी के माध्यम से ही तो अभिव्यक्त करता है। यह वाणी काव्य रचना-प्रक्रिया का केन्द्रिय बिन्दु है। कवि के अंदर भी अर्थमय वाणी है और बाहर अभिव्यक्ति के स्तर पर भी वह विद्यमान है।

संदर्भ

1. वैदिक कृष्णलाल संहिताओं की विविध विधाएं, प्र. सं. 1993, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, नंदनगरी, दिल्ली, पृ. 263
2. तिवारी, ब्रह्मानंद कालिदास ग्रंथावली, सं. 2005, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 371
3. शर्मा, सुलखचन्द्र साधारणीकरण और समानान्तर चिंतन, प्र. सं. 1984, देववाणी परिषद, नई दिल्ली, पृ. 52
4. सिंह, योगेन्द्र प्रताप भारतीय काव्यशास्त्रा, तृतीय संस्करण 2004, लोकभारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, पृ. 263
6. छान्दोग्योपनिषद, सं. संवत् 2061, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 681